शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.II, pp (725-727) April - June 2019

प्रेमचंद के उपन्यासों में विधवा– विमर्श

डॉ प्रकाश कुमार अग्रवाल
प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
खड़गपुर कॉलेज,
Email: agarwalparkash196@gmail-com

सारांश

हालांकि विधवाओं की समस्या एक सामाजिक समस्या है, लेकिन क्योंकि विधवा परिवार में रहती है,"तो उसके लिए आर्थिक स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है। वह बैठे–बैठे खाती है इसलिए सबको वह भारमालूम होती है और लोग उसे तंग करते हैं।"[1]

प्रेमचंद के उपन्यासों में अनेक ऐसी विधवाएं हैं, जो परोपजीवी बनकर दयनीय जीवन जीने को बाध्य हैं। 'निर्मला' उपन्यास में कल्याणी, रुक्मणी, सुधा जैसी नारियां विधवा जीवन का भार ढोने को विवश हैं। डॉ महेंद्र भटनागर के अनुसार दृढ प्रतिज्ञा में विधवा समस्या प्रमुख है, 'वरदान' व 'निर्मला' में गौण और 'कर्मभूमि' में आर्थिक दृष्टि से संपन्न विधवा होने के कारण नगण्य ही है।"[2]

प्रस्तावना

प्रेमचंद के उपन्यासों की विधवा नारियों में सर्वाधिक दयनीय स्थिति 'निर्मला' में तोताराम की विधवा बहन रुक्मणी की है। वह पारिवारिक तथा सामाजिक दोनों धरातल पर दीन– हीन, उपेक्षित एवं तिरस्कृत जीवन जीने को बाध्य है। 'गबन' उपन्यास में पति की मृत्यु के बाद विधवा रतन अपने भतीजे मणि भूषण द्वारा शोषित होती है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह रोटी– कपड़े तक के लिए मोहताज हो जाती है। समाज की इस व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करती हुई कहती है–"ना जाने किस पापी ने यह कानून बनाया कि पति के मरते ही हिंदू नारी इस प्रकार स्वत्व वंचिता हो जाती है।"[3]

पति की संपत्ति पर कब्जा कर लेने वाले स्वार्थी रिश्तेदारों को वह निकल जाने वाला जंतु कहती है। वह इतनी स्वाभिमानी है कि पति की संपत्ति हड़प करने वाले भतीजे मणि भूषण से कहती है–"मैं अपनी मर्यादा की रक्षा आप कर सकती हूं, तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं है. .. संसार में हजारों विधवाएँ हैं, जो मेहनत– मजदूरी करके अपना निर्वाह कर रही है। मैं भी उसी तरह मजदूरी करूंगी और अगर ना कर सकूंगी तो किसी गड्ढे में डूब मरूंगी । जो अपना पेट ना पाल सके, उसे जीते रहने का दूसरों का बोझ बनने का कोई हक नहीं ।"[4] रतन का उपर्युक्त कथन नारी के जागृत होने का संकेत देता है। आज तक कठपुतली की तरह दूसरों के इशारों

पर नाचने वाली नारी अब अपने स्वत्व के प्रति, अधिकारों के प्रति जागष्त हो गई है। अपनी परंपरागत स्थिति के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करती है। संयुक्त परिवार में नारी की स्थिति की वेदना को प्रेमचंद ने रतन के विद्रोही मन से इस प्रकार व्यक्त कराया है–"अगर मेरी जुबान में इतनी ताकत होती कि सारे देश में उसकी आवाज पहुंचती तो मैं सब स्त्रियों से कहती बहनों, किसी सम्मिलित परिवार में विवाह ना करना और अगर करना, तो जब तक अपना घर अलग ना बना लो, चौन की नींद ना सोना। यह मत समझो कि तुम्हारे पति के पीछे उस घर में तुम्हारा मान के साथ पालन होगा । अगर तुम्हारे पुरुषने कोई तरीका नहीं छोड़ा, तो तुम अकेली रहो ,चाहे परिवार में एक ही बात है। तुम अपमान और मजबूरी से नहीं बच सकती। अगर तुम्हारे पुरुश ने कुछ छोड़ा है तो अकेली रह कर भोग सकती हो, परिवार में रहकर तुम्हें उससे हाथ धोना पड़ेगा। परिवार तुम्हारे लिए फूलों की सेज नहीं, कांटो की शय्याहै । तुम्हें पार लगाने वाली नौका नहीं, तुम्हें निगल जाने वाला जंतु है।"[5]

प्रतिज्ञा की पूर्णा ऐसी नारी है, जो युवावस्था में ही विधवा बन जाती है। पूर्णा का पति गंगा स्नान करते समय पानी में डूब कर मर जाता है। पूर्णा को उसके पति के मित्र एवं पड़ोसी कमला प्रसाद के घर आश्रम मिलता है । कमला प्रसाद के मन में उनके प्रति वासना का भाव जागता है और वह उसे अपनी अंकषायिनी बनाना चाहता है। पूर्णा इसका विरोध करती हुई कहती है.. "अब जाने भी दो बाबूजी, क्यों मेरा जीवन भ्रष्ट करते हो? तुम मर्द हो, तुम्हारे लिए तो सब माफ है ।मैं औरत हूं, कहां जाऊंगी? डूब मरने के सिवाय मेरे लिए कोई रास्ता ना रह जाएगा।"[6]

'निर्मला की सुधा अपने पति की कामुक कुचेष्टाओं से चढ़कर उसे इतना फटकारती है कि वह आत्महत्या कर लेता है। अपने हाथ से अपना सौभाग्य सिंदूर पोंछ लेने वाली सुधा जीवन के भयानकतम वेदना के क्षणों में भी विचलित नहीं होती, क्योंकि वह नारी के वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों के प्रति पूर्ण जागरूक रहती है और उसका निर्वाह करती है। कामुक पति के स्थायी–विछोह की स्थिति में उसका एक ही उत्तर है–"ऐसे सौभाग्य से वैधव्य को मैं बुरा नहीं समझती।"[7]

प्रेमचंद से पूर्व उपन्यासों में नारी विधवा होना अपना दुर्भाग्य समझती थी । अपने पूर्व जन्म का फल मानती थी। इसलिए अपने आपको दोशी समझकर वे अपने को ही कोसती थी। हीनता की भावना के कारण परिवार में दासी जैसा व्यवहार मिलने पर भी मुंह ना खोलती थी। परंतु प्रेमचंद के उपन्यास की विधवा अपनी स्थिति के लिए पूरी तरह भाग्य को दोषी नहीं ठहराती, बल्कि कहीं–कहीं तो उसके अंदर विद्रोह की भावना भी है। प्रेमचंद को विधवा के प्रति पूरी सहानुभूति थी। वह विधवा–विवाह के पक्षधर थे। इस संदर्भ में डॉक्टर शंभूनाथ कहते हैं–"प्रतिज्ञा के पुराने औपन्यासिक रूप 'प्रेमा' में बाबू अमृतराय ने विधवा पूर्णा से विवाह का निष्चय किया था, इससे समाज में खलबली मच गई थी। वह प्रगतिशील कदम था, लेकिन पता नहीं प्रेमचंद ने 'प्रतिज्ञा' में यह कदम क्यों वापस ले लिया।"[8]

सच तो यह है कि 'प्रतिज्ञा' में प्रेमचंद ने विधवा विवाह वाली अपनी सोच से पैर पीछे नहीं खींचा बल्कि एक वैकल्पिक समाधान प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में विधवा– विवाह को अंतिम विकल्प के रूप में नहीं, बल्कि विधवा की रुचि एवं इच्छा के सापेक्ष दर्शाया गया है। कुल मिलाकर "प्रेमचंद ने विधवा– जीवन की विवषताएँ, उनपर होने वाले अत्याचार, उनके लिए सम्मानपूर्ण वातावरण बनाने के उपाय का वर्णन अपनी कृतियों में किया है। विधवा के प्रति उनके हृदय में जो दर्द था, वही जगह–जगह ज्वालामय शब्दों में अंकित हो गया है।"[9]

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रेमचंदः *आलोचनात्मक परिचय,* डॉ रामबिलास शर्मा, पृ.119
2. *समस्यामूलक* उपन्यासकार प्रेमचंद ,डॉ महेंद्र भटनागर, पृ.**158**
3. *गबन,* प्रेमचंद, पृ. **333**
4. वही, पृ. **230**
5. वही, पृ. **266**
6. प्रतिज्ञा, प्रेमचंद, पृ. **25**
7. हिंदी उपन्यास : *प्रेम और जीवन,* डॉ शांति भारद्वाज, पृ.**108**
8. प्रेमचंद का पुनर्मूल्यांकन, डॉ शम्भूनाथ, पृ.**41**
9. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद, डॉ महेंद्र भटनागर, पृ.**133**